विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं एवं शीर्षक .	P12 : दलित साहित्य
इकाई सं एवं शीर्षक .	M5 : दलित साहित्य का स्वरूप
इकाई टैग	HND_P12_M5
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र संयोजक-	प्रो. टी.वी. कट्टीमणि
इकाई लेखक-	प्रो. किशोरीलाल रैगर
इकाई-समीक्षक	प्रो. अब्दुल अलीम
भाषा-सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. प्रस्तावना
2. पाठ का उद्देश्य
3. दलित साहित्य का स्वरूप : वैचारिक पक्ष
4. विधागत स्वरूप
   - 4.1 . कविता
   - 4.2 . आत्मकथा
   - 4.3 . उपन्यास
   - 4.4 . कहानियाँ
   - 4.5 . आलोचना
5. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

- हिन्दी दलित साहित्य के स्वरूप से परिचित होंगे।
- हिन्दी दलित साहित्य के विभिन्न विधाओं के बारे में जान पाएँगे।
- हिन्दी दलित साहित्य के सौन्दर्यबोध से परिचित होंगे।
- परम्परागत हिन्दी साहित्य से दलित साहित्य की रूपगत भिन्नता समझेंगे।

2. प्रस्तावना

वस्तुतः दलित साहित्य, दलितों का साहित्यिक आन्दोलन ही नहीं, उनका सांस्कृतिक आन्दोलन भी है। सदियों से जिनके महती योगदान को इतिहास में स्थान नहीं मिला, दलित साहित्य के रूप में वे लोग अपनी जुबान मुखरित कर हाशिए से मुख्य पृष्ठ की ओर अपने को रेखांकित करने के लिए संघर्षरत हैं। दलित समाज पर सदियों से हो रहे अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध आवाज मुखरित करते हुए बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने *मूकनायक* पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन किया था। उसके मुखपृष्ठ पर उन्होंने सन्त तुकाराम का यह अभंग अंकित किया था-

काय करूँ आता, धरूनिया भीड़
निःशंक हे तोण्ड, वाजविले
नव्हे जगी कोणी मुकियाचा जाण
सार्थक लाजून नव्हे हित।

अर्थात अब लाज शर्म रखकर क्या करूँ? मैंने मुँह खोला है तो निस्सन्देह बोलूँगा ही। मूक और निरीह लोगों का संसार में कोई नहीं है, यह जानकर ही मैंने कुछ कहने का साहस किया हैं। (डॉ. चन्द्रकुमार बरठे, *दलित साहित्य आन्दोलन*, पृ. 69 से उद्धृत)

आज हिन्दी का दलित साहित्य विभिन्न स्वरूपों में हमारे सामने है। आत्मकथा, उपन्यास, कविता, संस्मरण, नाटक, कहानी आदि प्रमुख साहित्यक विधाओं में दलित साहित्य प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका उद्देश्य उन तमाम बातों को नकारने से है, जिनके कारण दलित समाज यन्त्रणापूर्ण जीवन जीने को विवश हुआ। मराठी के प्रख्यात चिन्तक म. भि. चिटणिस ने कहा है कि "प्रस्थापितों के विरुद्ध विद्रोह करने वाला साहित्य-हिन्दू संस्कृति और पौराणिकता से अलग साहित्य ही दलित साहित्य है। ऐसा मैं मानता हूँ और इसलिए दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा साहित्य ही दलित साहित्य है, ऐसा मैं नहीं मानता। मध्ययुगीन साहित्य से छुटकारा पाना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।" (*अस्मितादर्श*, फरवरी 1977, पृ. 42) सदियों की सामाजिक असमानता, आर्थिक शोषण, अस्पृश्यता, उत्पीड़न, सन्त्रास से मुक्ति के रूप में जो साहित्य लिखा जा रहा है वह दलित साहित्य के रूप में अभिव्यक्त है। दलित साहित्य एक पुरोगामी साहित्य है जो दलित अस्मिता को स्थापित करने के लिए संघर्षरत है।

3. दलित साहित्य का स्वरूप : वैचारिक पक्ष

दलित साहित्य समाज में सम्यक् परिवर्तन की बात करता है। उसने आज विभिन्न विधाओं के रूप में अपना स्वरूप ग्रहण कर लिया है। यह साहित्य हिन्दू पौराणिकता, वैचारिकता, मानसिकता व उन संस्कारों के विरुद्ध है, जिसमें मनुष्य-मनुष्य में भेद करने की बात कही गई है। इस सम्बन्ध में कमलेश्वर के विचार प्रांसगिक है – "आज के दलित साहित्य का उन्मेष मात्र साहित्यिक घटना ही नहीं, वह इतिहास का सम्पूर्ण वैज्ञानिक और विराट सामाजिक पुनर्मूल्याकंन करना चाहता है। दलित साहित्य उन निरपेक्षतावादियों, सौन्दर्यवादियों और निराशावादियों के लिए भी एक उत्तर है, जो यह समझ बैठे हैं कि साहित्य की कोई सक्रिय भूमिका नहीं रह गई है।" (कमलेश्वर, *सारिका,* अप्रैल 1975, सम्पादकीय)

दलित साहित्य सदियों से पीड़ित मानवता की पुकार है। इसके केन्द्र में मनुष्य है। इसलिए इसके मूल स्वरूप में सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव व वर्ण तथा जाति व्यवस्था का नकार है। दलित साहित्य की अनुभूति परम्परागत साहित्य से बिल्कुल अलग है। यह पीड़ित व असहाय मनुष्य की वेदना से जुड़ कर विषमताओं, धार्मिक-सामाजिक विसंगतियों, शोषण के उपादानों तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई पैदा करने वाले तत्त्वों का पुरजोर विरोध करता है तथा मनुष्य की मुक्ति की चिन्ता करता है। वस्तुतः दलित साहित्य दलितों की यथार्थ स्थिति, उसकी सीमाओं तथा सम्भावनाओं को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित करता है।

आज का दलित साहित्य दलितों के भोगे हुए यथार्थ को सामने लाने का प्रयास कर रहा है और इस प्रयास में वह जाति-पाँति का घोर विरोध करते हुए सदियों की विकृति, विद्रूपता, विषमता, शोषण व अन्याय का प्रतिरोध कर समतामूलक समाज की स्थापना की बात करता है इसलिए दलित साहित्य के मूल में बाबा साहेब अम्बेडकर के विचार हैं -"मनुष्य का समता, आजादी, भाईचारा लक्ष्य ही नहीं बल्कि जन्म सिद्ध अधिकार है। इन्हें हासिल करने के लिए दलित समाज को शिक्षित होना, संघर्षरत रहना और संगठित होना जरूरी है। वे 'अप्पदीपो भव'में विश्वास करते थे और मानते थे कि कोई बाह्य व्यक्ति, शक्ति, चमत्कार अथवा अवतार या पैगम्बर उनको नहीं उबारेगा। उन्हें अपने भीतर से ही बुद्ध की तरह ज्ञान अर्जित कर, उससे ऊर्जा प्राप्त कर, नायकत्व हासिल करना होगा। उन्हें खुद अपनी, अपने समाज की पूरी मानवता के विकास की मुहिम चलानी होगी।" (पुन्नी सिंह, *भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य*, पृ.334)

सही अर्थों में देखें तो हिन्दी साहित्य सीधे-सीधे सवर्ण साहित्य है, जिसमें दलितों का प्रतिनिधित्व न के बराबर है, फिर भला ऐसे साहित्य में दलित जीवन की छटपटाहट, आक्रोश, वेदना, स्वाभिमान जैसे मूल्यों की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है? इसलिए दलित साहित्य परम्परागत साहित्य के उन मानदण्डों का विरोध करता है जो विषमता, गैर-बराबरी, नित्यता, दैववाद, भाग्यवाद और पुनर्जन्म जैसे अवैज्ञानिक सोच को प्रस्थापित करता है। "समता, न्याय और स्वतन्त्रता दलित साहित्य-चिन्तन का आधार है और इस पर मुस्तैदी और मजबूती

से टिके रहने में ही उसकी शक्ति, समृद्धि और विस्तार की सम्भावनाएँ निहित हैं। दलित साहित्य का काम है विरोध और आलोचना से विचलित हुए बिना अपनी मंजिल की ओर निरन्तर बढ़ते रहना।" (जयप्रकाश कर्दम, *कथाक्रम,* नवम्बर 2000, पृ.85)

दलित साहित्य वस्तुतः जाति व वर्ण व्यवस्था के अभिशाप से उपजा है, क्योंकि इस व्यवस्था में जन्म से ही मनुष्य की पहचान निर्धारित की गई है, जो अपरिवर्तनीय है। इसलिए दलित साहित्यकार इस व्यवस्था का पुरजोर विरोध करते हैं। इस बात को इन शब्दों में विस्तार से समझा जा सकता है। "दलित शब्द पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य से जुड़ता है तब वह विरोध की ओर संकेत करता है। वह नकार या विरोध चाहे व्यवस्था का हो, सामाजिक विसंगतियों, धार्मिक रूढ़ियों, आर्थिक विषमताओं का हो या भाषा, प्रान्त के अलगाव का हो या साहित्यिक परम्पराओं का हो, दलित साहित्य नकार का साहित्य है। जो संघर्ष से उपजा है, उसमें समता-स्वतन्त्रता और बन्धुता का भाव है और वर्ण-व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है। इसका एक मात्र स्वर है सामाजिक परिवर्तन और अम्बेडकरवादी विचार।" (डॉ. पुष्पिता, *कथाक्रम,* नवम्बर 2000, पृ. 133)

दलित साहित्य का मुख्य स्वरूप मुख्यधारा से वंचित लोगों द्वारा लिखे साहित्य के रूप में निर्मित हुआ है और यह साहित्य, साहित्य में लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को स्थापित करने का प्रयास कर रहा है, जिसके मूल में अम्बेडकर का विचार दर्शन है। "अम्बेडकरवाद एक वैचारिक क्रान्ति का दर्शन है, जो भारतीय समाज में व्याप्त सभी प्रकार के अन्धविश्वासों, रूढ़िवादी परम्पराओं, मान्यताओं व रीति-रिवाजों का पोषण करने वाले वेदों, स्मृतियों व अन्य धार्मिक ग्रन्थों का सिर्फ वैज्ञानिक विश्लेषण ही नहीं, बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त सभी प्रकार की असमानताओं, भेदभाव व शोषणकारी प्रवृतियों के समाधान के साथ-साथ समतामूलक, शान्तिमय, प्रगतिशील, सुखमय व समृद्ध समाज के निर्माण का विकल्प भी प्रस्तुत करता है।" (ईश कम्मार गंगानिया, *अपेक्षा,* जुलाई-सितम्बर 2005, पृ.16)

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि दलित साहित्य मानव को अपना केन्द्र बिन्दु मानकर समानता का पाठ पढ़ाता है तथा घृणा की जगह प्यार व भ्रातृत्व भाव जगाता है। इसके स्वरूप को कवि गोबिन्द प्रसाद ने इन शब्दों में प्रकट किया है

मेरी लड़ाई / चेहरों से नहीं / मेरी लडाई
सत्ता की उस सत्ता से है/ जिसमें/ आदमी का चेहरा नहीं है।

(गोबिन्द प्रसाद, *अपेक्षा,* जुलाई-सितम्बर 2005, पृ. 10)

दलित साहित्य एक विचारधारात्मक आन्दोलन है। इस आन्दोलन की मूल प्रेरणा बुद्ध के समतामूलक समाज की संकल्पना, सिद्धों व नाथों की वर्ण व्यवस्था विरोधी दृष्टि के साथ सन्त कवियों की मानवतावादी दृष्टि रही है। इनके साथ समय-समय पर अखिल भारतीय स्तर के वे आन्दोलन भी रहे हैं, जिनके कारण दलित चेतना जाग्रत हुई। "पंजाब का आदिधर्मी आन्दोलन, उत्तर प्रदेश के आगरा क्षेत्र का जाटव आन्दोलन, पूर्वी उत्तर प्रदेश का

रविदास व केशवनारायण आन्दोलन, मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ का सतनामी आन्दोलन, महाराष्ट्र में फुले का आन्दोलन, बंगाल का नामशूद्र आन्दोलन, दक्षिण भारत के केरल में श्री नारायण धर्म परिचालन आन्दोलन तथा तमिलनाडु में पेरियार नायकर का आत्मसम्मान सम्बन्धी आन्दोलन प्रमुख रहे हैं।" (सं. वीरेन्द्र सिंह यादव, *नई सहस्त्राब्दी का दलित आन्दोलन,* पृ.110)

पिछली शताब्दी में हुए इन आन्दोलनों के साथ ही डॉ. भीमराव अम्बेडकर की दलित मुक्ति चेतना से दलित साहित्य का स्वरूप निर्मित हुआ है, इसलिए "दलित साहित्य में वस्तुतः दलित अस्मिता और अस्तित्व के लिए ब्राह्मणवाद का नकार आवश्यक है। नकार और विरोध की यह आग ही दलित साहित्य आन्दोलन की शक्ति है, यदि यह आग नहीं रहेगी तो फिर दलित साहित्य के कोई मायने नहीं रहेंगे।" (कृष्ण कुमार रत्तू, समकालीन *भारतीय दलित समाज, बदलता स्वरूप और संघर्ष*, पृ.216)

दलित साहित्य अपनी विविध विधाओं के माध्यम से दलितों के भोगे हुए यथार्थ को उकेरने का प्रयास कर रहा है, क्योंकि निश्चित रूप से यह भोगा हुआ यथार्थ शोषण, अपमान और वर्जनाओं से उपजा है, जो दलित अस्मिता को जगाने की ओर अग्रसर है। इसलिए इस साहित्य में आमूल-चूल परिवर्तन व क्रान्ति का आह्वान है। जयप्रकाश कर्दम अपनी एक कविता के माध्यम से कहते हैं-

मेरे शब्दों / केवल शब्द मत बने रहो,
अपने अर्थों में आ जाओ / तीर तलवार में बदल जाओ,
धरती आसमान को हिला दो / अन्याय की दुनिया में,
आग लगा दो / क्रान्ति का बिगुल बजा दो।

(जयप्रकाश कर्दम, तिनका-तिनका आग, पृ.102)

दलित साहित्य के मूल स्वर में वेदना, विद्रोह, संघर्ष और परम्परावादी हिन्दू मानसिकता का निषेध है। जिस व्यवस्था ने सदियों से दलितों को कुचलकर उन्हें गुलाम बनाया, उनके स्वाभिमान को रौंदकर सामाजिक विधानों से बाहर किया, दलित साहित्य इन सबको नकारता है। "अतः दलित साहित्य हम कह सकते हैं, एक हद तक इतिहास और शास्त्र का विरोधी है। वह नया शास्त्र निर्माण करना चाहता है। देखा जाए तो उनका यह परम्परा विरोध युगीन परिस्थितियों के अनुकूल और न्यायोचित है।" (डॉ. पाण्डुरंग वैजनाथ महालिंगे, *दलित अवधारणा एवं ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य,* पृ.62)

दलित साहित्य दक्षिण भारतीय भाषाओं, मराठी, गुजराती,बंगाली, पंजाबी के साथ हिन्दी में भी बखूबी लिखा जा रहा है और इन साहित्यकारों का सबसे अहम् सवाल ही यह रहा है कि दलित समाज ने वर्ण एवं जाति व्यवस्था को किन षड्यन्त्रों के तहत स्वीकार किया? दलित रचनाकारों ने वेगवती नदी में प्रवाह की तरह अपनी सब्र का बाँध तोड़ते हुए जो कुछ भी उनके विरुद्ध था, उनको डूबोने का प्रयास अपनी कलम के माध्यम से किया

है। "नारकीय जीवन जीने को विवश दलित और शोषित वर्ग जब-जब भी विशेष कहे जाने वाले समुदाय की ओर से घोर उपेक्षा का शिकार हुआ है, तब-तब उन दबे-पिसे लोगों की बस्ती टोली या कबीले के आस-पास के परिवेश में उनकी कसक पीड़ा और दर्दभरी गूँज की किसी न किसी रूप में अवश्य ही अभिव्यक्ति हुई।" (मोहनदास नैमिशराय, *आजकल*, अक्टूबर 1992)

निर्विवाद सत्य है कि इस साहित्य में दलितों की असह्य पीडा, सन्त्रास, उत्पीड़न के यथार्थ चित्रण के साथ शोषण से मुक्ति के लिए छटपटाहट है। इसलिए इस साहित्य का स्वरूप विद्रोहात्मक है कि सदियों से घुन खाए समाज की पीड़ा उसके जन्म से प्रारम्भ होकर उसका ताजिन्दगी पीछा नहीं छोड़ती, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए शब्द और भाषा भी अपनी पहचान खो चुके हैं। इस सम्बन्ध में ये पंक्तियाँ देखिए-

घुटनों पर टिकी कुहनियाँ/ और हथेलियों में थमा सिर
बेबस है वक्त के इस पड़ाव पर/ जहाँ शब्द और भाषा अपनी पहचान खो चुके हैं।

(ओम प्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का सन्ताप,* पृ.18)

4. विधागत स्वरूप

4.1. कविता

दलित साहित्य का स्वरूप कविता, कहानी आत्मकथा, उपन्यास आदि कई विधाओं के माध्यम से प्रकट हुआ है, किन्तु उसका मूल स्वभाव जितनी कविता में प्रकट हुआ है, उतनी अन्य विधाओं में नहीं। अतः दलित कविता पर विस्तार से चिन्तन करने की आवश्यकता है, ताकि दलित साहित्य का स्वरूप स्पष्ट हो सके।

दलित साहित्य सवर्ण साहित्य को अपना साहित्य नहीं मानता, क्योंकि कभी इस साहित्य में दलित पीड़ा का प्रस्तुतीकरण हुआ ही नहीं। अतः विषमता से परिपूर्ण उस साहित्य को नकारते हुए दलित कवि कह उठता है-

मैं कैसे मान लूँ/ तुम्हारे लिखे को
पूर्ण साहित्य/ जिसमें नहीं लिखा गया
मेरे बुजुर्गों की अँगूठा छाप किस्मत का / पूर्ण ब्यौरा।

दलित साहित्य का तेवर बहुत ही आक्रामक है। इसलिए वह हिन्दू संस्कृति को सिरे से खारिज करता है तथा धर्म के पाखण्ड को जड़ से मिटाने की बात कहता है। कवि सुखबीर के तेवर तो और भी तीखे हैं-

यहाँ साँस लेती है वह कुत्ता संस्कृति
जो आदमी को आदमी से काटती-बाँटती है
धन-धरती और रिश्तों को गैर-बराबरी के साथ।

(सुखवीर सिंह, *बयान बाहर*, पृ.21)

सदियों के शोषण, अपमान व सन्त्रास से उपजा दलित साहित्य आक्रामक तेवर के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए वह तमाम विरोधों और दवाबों के बावजूद हाथ में कमल लेकर दमन को ललकारता है तथा सीधे-सीधे शोषण की व्यवस्था व उसके पोषकों को चुनौती देते हुए कहता है-

सुनो वशिष्ठ द्रोणाचार्य तुम भी सुनो/
हम तुमसे घृणा करते हैं।/
तुम्हारे अतीत/तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं।

(मलखान सिंह, *सुनो ब्राह्मण*, पृ. 48)

दलित रचनाकारों के ऐसे आक्रामक तथा नकारात्मक तेवर पर टिप्पणी करते हुए कमलाप्रसाद ने लिखा है कि "यहाँ 'घृणा' और 'आस्थाओं पर थूकना' सुनकर परेशान होने की जरूरत नहीं है। इन शब्दों के अलावा इस समाज का अनिवार्य सच व्यक्त नहीं हो सकता। विरुद्धों में सामंजस्य का मनोभाव अभी की परिस्थितियों में उनके लिए सम्भव नहीं है। एकलव्य और शम्बूक का बदला इतिहास कभी न कभी तो लेगा ही।" (डॉ. कमलाप्रसाद, *कथाक्रम,* नवम्बर 2000, पृ. 79)

दलित साहित्य आत्मा-परमात्मा व भाग्यवाद को खारिज करता है। इसलिए यहाँ पर कथित ईश्वर को मृत घोषित करता है, क्योंकि ईश्वर, आत्मा व भाग्यवाद की आड़ में ही दलितों पर कहर बरपा गया है। अतः कवि प्रश्न करते हैं -

ईश्वर की मौत/उस पल होती है/
जब मेरे भीतर उठता है सवाल/
ईश्वर का जन्म किस माँ की कोख से हुआ/
ईश्वर का बाप कौन। (मोहनदास नैमिशराय)

दलितों के लिए आर्थिक प्रतिष्ठा से अधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा है, जो कि दलित साहित्य का मूल दर्शन और लक्ष्य है। इसलिए दलित साहित्य कार्ल मार्क्स की आर्थिक समानता की अपेक्षा अम्बेडकर दर्शन की सामाजिक समानता की बात करता है। एक कवि ने 'चिड़िया' के प्रतीक के माध्यम से इस बात को इस तरह स्पष्ट किया है-

वह चिड़िया भूख से नहीं/चिड़िया होने से पीड़ित थी/
वह कैसे जानता/गरीबी नहीं/
सामाजिक बेइज्जती अखरती है।

(कँवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती*)

समाज में एक धारणा बन गई है कि दलित आरक्षण पाकर शासन में बराबरी का हक माँगने लगे हैं, जबकि वे इसके योग्य नहीं? जबकि भारतीय संविधान दलितों को इन सबका अधिकार देता है। इसी मानसिकता के विरुद्ध दलित कवि अपनी बात को स्पष्ट करता हुआ कहता है-

हमारी भागीदारी के लिए/योग्यता की शर्त/
कब तक फेकोगे तुम/अपना मकड़जाल हम पर?
घबराओं नहीं/समय आ रहा है/जब हम भी बढ़ेगे तुमसे/
दौड़ने की शर्त/जीतेंगे बाजी/तोड़ेंगे तुम्हारा दर्प/"

(सी.बी.भारती, *चुनौती*, पृ. 82)

इस वस्तु स्थिति पर खगेन्द्र ठाकुर की टिप्पणी उचित जान पड़ती है- "दलित चेतना के अन्तर्गत दलित होने का त्रासद-बोध होना, दलित होते रहने की स्थिति को अस्वीकार करना, वर्तमान राजसत्ता में समुचित भागीदारी और कुल मिलाकर दलितत्व से मुक्ति आज की दलित चेतना के तत्त्व हैं। मतलब यह है कि इस चेतना को ऐतिहासिक दृष्टि से,यानी विकास और परिवर्तन के क्रम में देखना चाहिए तथा दलितत्व से मुक्ति का अर्थ है अतीत और वर्तमान में मुक्त होकर भविष्य का, अर्थात जीवन और समाज की नई अवस्था का निर्माण करने की ओर उन्मुख होना, उसके लिए संगठित एवं सामूहिक संघर्ष करना।" (खगेन्द्र ठाकुर, *कथाक्रम*, नवम्बर 2000, पृ. 48-49)

4.2. आत्मकथा

दलित साहित्य कविताओं के साथ-साथ आत्मकथाओं के माध्यम से भी खूब उभरा है। दलित आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिशराय की *अपने-अपने पिंजरे* (दो भाग), ओमप्रकाश वाल्मीकि की *जूठन* (दो भाग), कौशल्या बैसन्त्री की *दोहरा अभिशाप,* सूरजपाल चैहान की *तिरस्कृत*, के साथ ही *तिरस्कार,* श्यौजराज सिंह बेचैन की *मेरा बचपन मेरे कन्धों पर,* तुलसीराम की *मुर्दहिया*, *मणिकर्णिका,* डी.आर.जाटव की *मेरा सफर मेरी मंजिल,* माता प्रसाद की *झोंपड़ी से राज भवन तक,* सुशीला टाकभौरे की *शिकंजे का दर्द* आदि प्रमुख हैं, जिनके माध्यम से दलित जीवन की मर्मान्तक पीड़ा व त्रासदी का यथार्थ उभरकर सामने आया है। दलित लेखकों द्वारा रचित ये आत्मकथाएँ साहित्यालोचन की उस धारणा को तोड़ती हैं, जिसमें माना गया है कि क्यों बड़ा और प्रतिष्ठित व्यक्ति ही अपनी आत्मकथा लिख सकता है। ये आत्मकथाएँ जहाँ एक ओर दलितों के जीवन यथार्थ व उनके संघर्ष को अभिव्यक्त कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर इनमें सामाजिक वर्जनाओं से मुक्ति और पुनर्वास की ओर भी संकेत है। "दलित आत्मकथाएँ उन शिलालेखों की तरह है, जिनके तथ्यों पर दलित इतिहास की नींव खडी होगी। चूँकि ये अपने समय में, अपने लोगों के बीच में, स्वयं लेखक द्वारा लिखी गई हैं, इसलिए उनकी प्रामाणिकता किसी शिलालेख से कम नहीं। जबकि दलित आत्मकथाओं का दुःख-दर्द, उसकी प्रतिकूल परिस्थितियाँ, अपने देश के बारे में उसकी राय इत्यादि सब मिलकर पाठक को कहीं से भी सुखद एहसास नहीं कराती।" (डॉ. राजेश पासवान, *हंस*, अगस्त 2004, पृ. 106)

दलित आत्मकथाएँ पाठक को झकझोर देती हैं। वस्तुतः ये आत्मकथाएँ नहीं अपितु दलित जीवन का दहकता दस्तावेज है तथा सवर्ण समाज को सम्बोधित संवाद है, जिसमें उन्होंने अपने दुःख-दर्द को बयाँ करते हुए समाज के उन लोगों से प्रश्न किया है, जिन्होंने उनकी पशुओं से भी बदतर जिन्दगी की है। इस सम्बन्ध में लक्ष्मण गायकवाड़ की आत्मकथा की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य है- "जब लोग कहते हैं कि भारत मेरा देश है, सारे भारतीय मेरे बन्धु हैं, मुझे देश की परम्परा का अभिमान है, मुझे लगता है कि अगर यह सब कुछ सही है तो फिर हमें बिना अपराध के क्यों पीटा जाता है? अगर सभी भारतीय भाई-भाई हैं तो फिर हम जैसे भाइयों को काम क्यों नहीं दिया जाता? हमें खेती के लिए जमीन क्यों नहीं दी जाती?...ऐसी स्थिति में इस देश की परम्परा का अभिमान में, क्यों और कैसे रखूँ?" (*उठाईगीर*, पृ.51)

ये दलित आत्मकथाएँ भले ही व्यक्तिगत अनुभव हों, किन्तु इनके माध्यम से सम्पूर्ण दलित समाज व उसकी पीड़ा उजागर हुई है। इन आत्मकथाओं ने दलित अस्मिता का बोध करवाया है तथा इनके माध्यम से दलित चेतना जाग्रत हुई है।

4.3. उपन्यास

अपनी अस्मिता को सिद्ध करने के लिए दलित उपन्यासकारों ने भी जोरदार पहल की है। इन दलित उपन्यासों में प्रेम कपाडिया का *मिट्टी की सौगन्ध,* जयप्रकाश कर्दम का *छप्पर,* धर्मवीर का *पहला खत,* डी.पी. वरूण का *अमर-ज्योति,* रामजीलाल सहायक का *बन्धन मुक्त,* सत्यप्रकाश का *जस तस भई सवेर,* मोहनदास नैमिशराय का *मुक्ति पूर्व,* गुरुचरण सिंह का *डूब जाती है नदी,* शरण कुमार लिम्बाले का *नर वानर,* रूपनारायण सोनकर का *सूअरदान* आदि प्रमुख हैं। इन कृतियों में जहाँ एक ओर दलितों के सामाजिक आर्थिक शोषण व उत्पीड़न का कारुणिक व यथार्थ चित्रण हुआ है वहीं दूसरी ओर दलित उपन्यासकारों ने अपनी अस्मिता को सिद्ध करने के लिए ब्राह्मणवादी एवं सामन्ती ताकतों से पुरजोर संघर्ष को भी चित्रित किया है। स्पष्ट है कि स्वाधीनता के सात दशक पश्चात आज भी दलितों की स्थितिमें अधिक सुधार नहीं हुआ है। जो कुछ बदलाव हुआ है वह आर्थिक है। दलित उपन्यासों के स्वरूप के सम्बन्ध में तेजसिंह की टिप्पणी उचित प्रतीत होती है - "दलित उपन्यासों का मूल स्वर विद्रोह का रहा है। यह विद्रोह ब्राह्मणवादी, सामन्तशाही व्यवस्था के उस घिनौने चरित्र के प्रति है, जिसमें हजारों साल से दलितों का सामाजिक, आर्थिक शोषण होता रहा है, उनकी सांस्कृतिक चेतना को अवरुद्ध किया गया है, उनके जनवादी जनतान्त्रिक अधिकारों का हनन किया गया है तथा उनकी औरतों का यौन-शोषण किया गया है। इन सब गैर-लोकतान्त्रिक और अमानवीय स्थितियों ने दलितों में विद्रोह को जन्म दिया है।" (तेजसिंह, *कथाक्रम*, नवम्बर 2000, पृ. 119)

4.4. कहानियाँ

दलित साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए दलित कहानीकारों की चर्चा भी अपेक्षित है। इन कहानियों के माध्यम से दलित पीड़ित समाज के यथार्थ चित्रण के साथ दलितों की आशाओं, आकांक्षाओं और इच्छाओं का भी चित्रण हुआ है। दलित कहानीकारों में मोहनदास नैमिशराय, रत्नकुमार साम्भरिया, ओमप्रकाश वाल्मीकि, हेमलता महीश्वर, सूरजपाल चौहान, सत्यप्रकाश, कुसुम मेघवाल, सुशीला टाकभौरे, अजय नावरिया, श्यौराज सिंह बेचैन आदि का नाम लिया जा सकता है। दलित अस्मिता को प्रतिष्ठित करने में ओमप्रकाश वाल्मीकि की *ग्रहण, सलाम, पच्चीस चौका डेढ़ सौ,* सूरजपाल चौहान की *साजिश,* रत्नकुमार साँभरिया की *शर्त, कील, खेत, आखेट और फुलवा,* मोहनदास नैमिशराय की *अपना गाँव* आदि कहानियों की चर्चा की जा सकती है, जिनमें व्यापक रूप से दलित-उत्पीड़न व उसके विरूद्ध संघर्ष को दिखाया गया है। "इन कहानियों के माध्यम से दलितों के दुःख-दर्द, परेशानी, गुलामी, अधःपतन और उपहास को चित्रित किया गया है, जो समाज के सामने यक्ष प्रश्न खड़ा करती है। इन कहानियों में आक्रोश है, आग है, गुस्सा है तो साथ-साथ संवेदना, मानवीयता और सब्र भी है, न्याय की उत्कृष्ट लालसा है, समानता की तीव्र ललक है, भाईचारे की भावना है,आदर पाने की इच्छा भी बलवती है।" (रमणिका गुप्ता, *दूसरी दुनिया का यथार्थ*, पृ. 33)

4.5. आलोचना

सृजनात्मक लेखन के साथ-साथ आज दलित आलोचना व उसके मानदण्ड भी तय किए जा रहे हैं। दलित आलोचना में डॉ धर्मवीर, डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ.एन. सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरण कुमार लिम्बाले, डॉ. कालीचरण स्नेही, डॉ. तेजसिंह, डॉ जयप्रकाश कर्दम, डॉ. किशोरीलाल आदि का नाम लिया जा सकता है। दलित लेखन के सन्दर्भ में सवर्ण आलोचकों द्वारा यह प्रश्न उठाया गया है कि दलित साहित्य में सौन्दर्य बोध नहीं, वह रूखा फूहड और भदेस है। दलित आलोचकों ने बेबाक स्वर में इसका उत्तर दिया है कि जिनके जीवन में कभी सुन्दरता ने पाँव ही नहीं रखे, जिन्होंने कभी सूरज की रोशनी देखी ही नहीं, जिन्होंने कभी गुलाब के फूल की खुशबू ली ही नहीं,वे परम्परागत सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यों से दलित साहित्य की आलोचना कैसे करेंगे! अतः दलित आलोचक कहते हैं कि 'बदबू ही हमारा सौन्दर्यशास्त्र है।'

दलित आलोचना रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह की आलोचना पद्धति से अलग हटकर है।परम्परागत सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यों में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को साहित्यिक मूल्य माना है, लेकिन दलित लेखन में जहाँ उत्पीड़न, वेदना व आक्रोश का ही चित्रण हो,वहाँ पर हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी, जिसका स्वयं प्रेमचद ने समर्थन किया है। अतः दलित आलोचना का मुद्दा समाजशास्त्रीय है, कोरा सौन्दर्यशास्त्रीय नहीं; क्योंकि दलित समीक्षक दलित साहित्य की समीक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टि से करते हैं। दलित साहित्य जहाँ विद्रोह, शोषण और विषमता के विरुद्ध है, वहीं उसके नकार 'मुझ पर जो लादा गया है- वह फेंक देने के लिए है, को भी दर्शाता है और इसी स्वरूप की समीक्षा भी होती दिखती है। पर साहित्य में 'विद्रोह' और 'नकार' का साहित्यिक विश्लेषण नहीं होता । वेदना, विद्रोह और नकार की सामाजिक मीमांसा की जाती है, लेकिन वेदना, विद्रोह और नकार के साहित्यिक रूप का ब्योरा नहीं दिया जाता। दलित समीक्षा दलित साहित्य में साहित्यिक विशेषताओं की ओर ध्यान न देकर सामाजिक व्यवस्था पर ही अधिक विचार करती हुई दिखती है। आज तक की दलित समीक्षा का प्रधान आशय मानवतावादी मूल्यांकन ही रहा है। यह मानवतावादी विचार ही दलित साहित्य में अम्बेडकरी विचार है।" (शरण कुमार लिम्बाले, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र*, पृ 59)

5. निष्कर्ष

बुद्ध, कबीर, फुले, अम्बेडकर की मानवतावादी विचारधारा से प्रभावित दलित साहित्य सवर्ण एवं ब्राह्मणवादी मानसिकता के विरुद्ध प्रतिरोध का साहित्य है;जिसमें दलित अस्मिता को प्रतिष्ठित करने के लिए दलन, उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार व सन्त्रास से मुक्ति की कामना की गई है। अतः दलित साहित्य विभिन्न साहित्यक विधाओं--आत्मकथा, कविता, उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि के माध्यम से हमारे सामने आ रहा है तथा मुख्यधारा के साहित्य को चुनौती देकर साहित्य के मुखपृष्ठ पर अपना स्थान बनाने की पुरजोर कोशिश कर रहा है। यह साहित्य विभिन्न स्वरूपों एवं प्रवृतियों के रूप में हमारे सामने अभिव्यक्त हो रहा है। इसके मूल में डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन प्रमुख है, इसमें दलित-पीडित मानवता की स्वतन्त्रता, मनुष्य की समता व भ्रातृत्व की बात की

गई है। इसलिए यह साहित्य रूढ़िवादी परम्पराओं को नकारते हुए शुद्ध सामाजिकता की स्थापना पर जोर देता है। अतः यह भगवान, भाग्यवाद एवं पुनर्जन्म को नकारता है तथा वर्ण व्यवस्था, जातिवाद, साम्प्रदायिकता व क्षेत्रवाद को भी नकारता है। यह समाजवाद, ब्राह्मणवाद व पूँजीवाद को सिरे से खारिज कर मानवतावादी व लोकतान्त्रिक मूल्यों को तरजीह देता है। भले ही इसके स्वरूप में हमें वेदना, विद्रोह व नकार का भाव दृष्टिगत होता हो, किन्तु ये प्रवृतियाँ स्वाभाविक है व दलित साहित्य का मूल स्वरूप है। आलोचना के क्षेत्र में यह साहित्य रामचन्द्र शुक्लीय परिभाषा को नकारता है, तो सौन्दर्य की कसौटी पर नए मापदण्ड निर्धारित करते हुए सत्यं, शिवं व सुन्दर की परिभाषा को बदलते हुए मानवतावाद में सौन्दर्य की तलाश करता है। इस साहित्य की आलोचना पद्धति समाजशास्त्रीय है, वहाँ 'कला के लिए कला' नहीं 'जीवन के लिए' है। दलित साहित्य इतिहास, समाज, संस्कृति, साहित्य व उनके परम्परागत मानदण्डों की पुनर्व्याख्या कर दलित मानव को सर्वोपरि मानता है और सदियों से छटपटाती सन्त्रस्त मानवता की मुक्ति ही इसका लक्ष्य है, जिसमें एक ओर बुद्ध की करुणा है तो दूसरी ओर फुले-अम्बेडकर का मानवतावादी दृष्टिकोण।

A Gateway to All Post Graduate Courses